भारत के सर्वोच्च न्यायालय में

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल याचिका संख्या 967/2010

मेसर्स जियो मिलर एंड कंपनी प्राइवेट लिमिटेड ...अपीलकर्ता

बनाम

अध्यक्ष, राजस्थान विद्युत उत्पादन निगम लिमिटेड .... प्रतिवादी

के साथ

सिविल याचिका संख्या 968/2010

सिविल याचिका संख्या 969/2010

निर्णय

मोहन एम. शांतानागौदर, न्यायाधीश

1. अपीलें, अपीलकर्ता द्वारा मध्यस्थता अधिनियम, 1996 (जिसे इसमें इसके बाद '1996 का अधिनियम'कहा गया है) की खंड 11 (6) के तहत दायर तीन मध्यस्थता आवेदनों – 25/2003, 27/2003 और 28/2003 (मध्यस्थता आवेदन) को खारिज करते हुए राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर पीठ के दिनांक 25.01.2007 के संयुक्त निर्णय से उत्पन्न होती हैं, जिसमें इन अपीलों में आम अपीलकर्ता और प्रतिवादी के बीच विवादों के न्यायनिर्णयन के लिए एक मध्यस्थ की नियुक्ति की मांग की गई थी।

2. इन अपीलों को जन्म देने वाले तथ्य इस प्रकार हैंः प्रतिवादी ने एक जल उपचार संयंत्र पर कार्य के निष्पादन के लिए निविदाएं जारी की थीं। अपीलकर्ता के पक्ष में तीन कार्य आदेश दिनांक 7.10.1979, 4.4.1980 और 3.5.1985 सौंपे गए थे। इन कार्य आदेशों के संबंध में निविदा आमंत्रित करने वाले तीन नोटिस

(एनआईटी) दस्तावेजों ने पक्षकारों के बीच तीन अलग–अलग अनुबंधों के नियम और शर्तों का गठन किया। तीनों अनुबंधों में एक सामान्य मध्यस्थता खंड था, जो इस प्रकार हैः (प्रासंगिक भाग):

> "(i) यदि किसी समय क्रेता और आपूर्तिकर्ता के बीच संविदा पर या उसके संबंध में कोई प्रश्न/विवाद/अंतर उत्पन्न होता है, तो कोई भी पक्ष एक बार दूसरे को प्रश्न, विवाद या अंतर बता सकता है और उसे राजस्थान राज्य विद्युत बोर्ड, जयपुर के अध्यक्ष या इस प्रयोजन के लिए उनके द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति (इसके बाद इसे मध्यस्थ के रूप में संदर्भित किया जाएगा) को संदर्भित किया जाएगा। मध्यस्थ/मध्यस्थों के लिए इस तरह के संदर्भ को भारतीय मध्यस्थता अधिनियम, 1940 और उसके वैधानिक संशोधनों के अर्थ में मध्यस्थ के लिए एक प्रस्तुति माना जाएगा।"

3. अपीलार्थी का मामला है कि प्रतिवादी तीनों संविदाओं के तहत उन्हें देय भुगतान करने में विफल रहा है। 1997 तक, अपीलकर्ता बकाया भुगतानों के संबंध में प्रतिवादी के साथ चर्चा में शामिल था और प्रतिवादी उसी पर अपने निर्णय में देरी करता रहा। दिनांक 4 अक्टूबर 1997 को अपीलकर्ता ने बकाया भुगतान जारी करने के लिए प्रतिवादी बोर्ड द्वारा गठित निपटान समिति से संपर्क किया। यह अपीलार्थी का मामला है कि उन्हें मध्यस्थता शुरू करने से पहले समझौता समिति के साथ इस मामले को आगे बढ़ाना आवश्यक था.तथापि, समझौता समिति भी उनके अभ्यावेदनों का उत्तर देने में विफल रही।

प्रतिवादी ने आंतरिक संचार दिनांक 20.11.1997 के माध्यम से स्वीकार किया कि मामला उनके पास विचाराधीन था। इसके बाद 17–18.12.1999 दिनांकित पत्रों द्वारा प्रतिवादी ने अपीलकर्ता को आंशिक रूप से रुपये 1,34,359.12 की सीमा तक के एक दावे का उत्तर दिया और सत्यापन के लिए कुछ अन्य दावों के बिलों/चालान के विवरण का अनुरोध किया। अपीलकर्ता ने दिनांक 6.1.2000 को यह कहते हुए उत्तर दिया कि बिलों के भुगतान की प्रक्रिया पहले ही पूरी कर ली गई थी और प्रतिवादी को पहले प्रस्तुत बिलों की फोटोकॉपी भेजी गई थी।

दिनांक 5–10–2002 और 10–10–2002 को अपीलकर्ता ने सभी बकाया राशियों के भुगतान का अनुरोध करते हुए प्रतिवादी को एक अंतिम संदेश भेजा। अभी तक भुगतान नहीं किया गया था, तो अपीलकर्ता ने मध्यस्थता खंड के तहत प्रदान किए गए प्रावधान के अनुसार भुगतान से संबंधित विवादों के अधिनिर्णय के लिए एक मध्यस्थ की नियुक्ति का अनुरोध करते हुए दिनांक 22 नवंबर, 2002 को प्रतिवादी को एक संदेश भेजा। हालांकि, प्रतिवादी ने पक्षकारों के बीच समझौते के तहत निर्धारित 30 दिनों की अवधि के भीतर एक मध्यस्थ की नियुक्ति नहीं की,इसलिए अपीलकर्ता ने एक मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए उपरोक्त मध्यस्थता आवेदन दायर किए हैं। इसके विपरीत, प्रतिवादी का प्रतिवाद है कि अपीलार्थी की स्वयं की स्वीकृति के अनुसार, कार्य आदेशों के लिए अंतिम बिल 1983 में उठाया गया था, इसलिए चूंकि मध्यस्थता के लिए अनुरोध केवल 2002 में किया गया था, इसलिए अपीलकर्ता का दावा परिसीमा से वर्जित है।

4. उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय में प्रत्यर्थी के तर्क को स्वीकार किया। न्यायालय ने पाया कि अपीलकर्ता ने दिनांक 8.2.1983 को अंतिम बिल पेश किया था, लेकिन इस बारे में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया था कि वह 1983 में विवाद को तुरंत अध्यक्ष, राजस्थान राज्य विद्युत बोर्ड के पास भेजने के लिए कोई कदम उठाने में विफल क्यों रहा, जैसा कि मध्यस्थता खंड के तहत प्रदान किया गया है, इसके बजाय 2002 में मध्यस्थ की नियुक्ति का अनुरोध किया था। इसके अलावा, कि अपीलकर्ता को 1996 अधिनियम के तहत ऐसा अनुरोध करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, यह देखते हुए कि अनुबंधों में यह प्रावधान है कि मध्यस्थता अधिनियम, 1940 (1940 अधिनियम) के तहत नियुक्त किया जाना है। यह सब दर्शाता है कि अपीलकर्ता ने बिना किसी वास्तविक विवाद के अस्तित्व के, प्रतिवादी के खिलाफ मौद्रिक दावे को आगे बढ़ाने के लिए केवल एक जुए के रूप में मध्यस्थता आवेदन दायर किए थे। इस प्रकार, उच्च न्यायालय ने अपने आक्षेपित निर्णय में कहा कि अपीलकर्ता 1996 के अधिनियम की खंड 43 (3) के तहत आवेदन दाखिल करने में देरी को उचित ठहराते हुए कठिनाई या अन्याय का कोई मामला बनाने में विफल रहा था, और मध्यस्थता आवेदन सीमा द्वारा आशातीत रूप से वर्जित थे। इसलिए यह अपील की गई है।

5. हमारे विचार के लिए जो सीमित मुद्दा उठता है, वह यह है कि क्या इस मामले के तथ्यों के आधार पर मध्यस्थता आवेदन सीमा द्वारा वर्जित हैं?

अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने जोरदार तर्क दिया कि कार्रवाई का कारण 1983 या 1989 में नहीं, बल्कि 17/18.12.1999 के पत्रों से उत्पन्न हुआ, जिसमें प्रतिवादियों ने अपीलकर्ता के दावों को खारिज कर दिया। दिनांक 18.12.1999 से पहले की अवधि, जिसके दौरान पक्षकार बातचीत कर रहे थें और एक–दूसरे के अनुरूप थीं, अतः इसको सीमा अवधि की गणना के उद्देश्य से नहीं गिना जा सकता था। यह अपीलकर्ता द्वारा भेजे गए अभ्यावेदनों का जवाब देने में प्रत्यर्थी के विलंब के कारण था कि मध्यस्थता आवेदन दाखिल करने में विलंब हुआ। इसलिए मध्यस्थता आवेदन सीमा द्वारा वर्जित नहीं हैं। अपनी दलील के समर्थन में, उन्होंने ***मेजर (सेवानिवृत्त) इंदर सिंह रेखी बनाम दिल्ली विकास प्राधिकरण, (1988) 2 एससीसी 338, हरिशंकर सिंघानिया और अन्य बनाम गौर हरि सिंघानिया और अन्य, (2006) 4 एससीसी 658, श्री राम मिल्स लिमिटेड बनाम यूटिलिटी प्रीमिसेज (पी) लिमिटेड, (2007) 4 एससीसी 599 और सुंदर कुकरेजा और अन्य बनाम मोहन लाल कुकरेजा और अन्य, (2009) 4 एससीसी 585*** में इस न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया।

6. परिसीमा के मुद्दे पर निर्णय लेने से पहले, हमें पहले इस पर विचार करना चाहिए कि क्या यह 1940 का अधिनियम है या 1996 का अधिनियम है, जो मध्यस्थता आवेदनों पर लागू होता है। 1996 के अधिनियम की खंड 85 में निम्नलिखित का उपबंध किया गया हैः

> **"85. निरसन और बचत** – (1) मध्यस्थता (प्रोटोकॉल और कन्वेंशन) अधिनियम, 1937 (1937 का 6), मध्यस्थता अधिनियम, 1940 (1940 का 10) और विदेशी पंचाट (मान्यता और प्रवर्तन) अधिनियम, 1961 (1961 का 45) को इसके द्वारा निरस्त किया जाता है।
>
> (2)ऐसे निरसन के बावजूद, –
>
> (क) उक्त अधिनियमों के प्रावधान मध्यस्थ कार्यवाहियों के संबंध में लागू होंगे जो इस अधिनियम के लागू होने से पहले शुरू हुए थे जब तक कि पार्टियों द्वारा अन्यथा सहमति नहीं दी गई थी <u>लेकिन यह अधिनियम मध्यस्थता की कार्यवाही के</u>

संबंध में लागू होगा जो इस अधिनियम के लागू होने पर या उसके बाद शुरू हुई थी।

(ख) उक्त अधिनियमों के तहत बनाए गए सभी नियम और प्रकाशित अधिसूचनाएं, जिस हद तक वे इस अधिनियम के विरुद्ध नहीं हैं, क्रमशः इस अधिनियम के तहत बनाए गए या जारी किए गए माने जाएंगे।" (जोर दिया गया)

1996 के अधिनियम की खंड 21 में यह उपबंध किया गया हैः

"21 **माध्यस्थम् कार्यवाहियों की शुरूआत–** जब तक कि पक्षकारों द्वारा अन्यथा सहमति न हो, किसी विशेष विवाद के संबंध में मध्यस्थता की कार्यवाही उस तारीख को शुरू होती है जिस पर प्रतिवादी द्वारा उस विवाद को मध्यस्थता के लिए भेजे जाने का अनुरोध प्राप्त होता है।"

यह निश्चित विधि है कि 1996 अधिनियम की खंड 21 और खंड 85 (2) (क) के संयुक्त पठन पर, यह विनिश्चय करने के प्रयोजन के लिए माध्यस्थम् कार्यवाही के प्रारंभ की तारीख को उस तारीख के रूप में माना जाएगा जिस पर किसी मध्यस्थता की नियुक्ति का अनुरोध करने वाले दूसरे पक्षकार को सूचना दी गई थी (***मिल्कफूड लिमिटेड बनाम जीएमसी आइसक्रीम (पी) लिमिटेड, (2004) 7 एससीसी 288 शेट्टीज कंस्ट्रक्शन कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम कोंकण रेलवे कंस्ट्रक्शन एंड अन्य, (1998) 5 एससीसी 599***देखें)।

यद्यपि कड़ाई से कहा जाए तो 1996 अधिनियम दिनांक 22.8.1996 से लागू हुआ, सभी व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए इसे दिनांक 25.1.1996 से प्रभावी माना जाता है, जब मध्यस्थता और सुलह अध्यादेश, 1996 लागू हुआ था। अतः यदि नोटिस की तारीख 25 जनवरी, 1996 से पहले थी तो 1940 का अधिनियम लागू होगा। यदि सूचना की दिनांक 25.01.1996 को या उसके बाद थी, तो 1996 अधिनियम माध्यस्थम कार्यवाहियों पर लागू होगा, हालांकि मध्यस्थता खंड में 1940 अधिनियम के तहत कार्यवाही पर विचार किया गया है (***देखें फ्यूर्स्ट डे लॉसन लिमिटेड बनाम जिंदल एक्सपोर्ट्स लिमिटेड,*** (2001) 6 एससीसी 356: ***मध्यस्थता की विधि और व्यवहार पर ओ. पी. मल्होत्रा, न्यायाधीशमूर्ति इंदु मल्होत्रा***

संस्करण, 2014 पृष्ठ 1915 पर देखें)। *मिल्कफूड लिमिटेड (पूर्वोक्त)*में भी, मध्यस्थता 1940 के अधिनियम के उपबंधों द्वारा शासित था। अपीलकर्ता ने दिनांक 14.9.1995 को एक मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए प्रतिवादी को एक नोटिस भेजा। अतः इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि 1940 का अधिनियम लागू होगा।

वर्तमान मामले में, चूंकि 2002 में प्रतिवादी को नोटिस भेजा गया था, इसलिए 1996 अधिनियम के प्रावधान अपीलकर्ता द्वारा दायर वर्तमान मध्यस्थता आवेदनों पर लागू माने जाएंगे.हालांकि, इसकी अलग से जांच की जानी बाकी है कि क्या उपरोक्त आवेदन वैधानिक सीमा अवधि के भीतर दायर किए गए हैं।

7. 1996 के अधिनियम की खंड 43 (सुसंगत भाग) में निम्नलिखित उपबंध किया गया है:

> **"43. सीमाएं**– (1) परिसीमा अधिनियम, 1963 (1963 का 36) माध्यस्थमों पर उसी प्रकार लागू होगा जिस प्रकार वह न्यायालय की कार्यवाहियों पर लागू होता है।
>
> .....
>
> (3) जहां मध्यस्थता के लिए भविष्य के विवादों को प्रस्तुत करने के लिए एक मध्यस्थता समझौता प्रदान करता है कि कोई भी दावा जिस पर समझौता लागू होता है, जब तक कि समझौते द्वारा निर्धारित समय के भीतर मध्यस्थता की कार्यवाही शुरू करने के लिए कुछ कदम नहीं उठाया जाता है, और एक विवाद उत्पन्न होता है, जिस पर समझौता लागू होता है, न्यायालय, यदि यह राय है कि मामले की परिस्थितियों में अनुचित कठिनाई का कारण होगा, और इस बात के बावजूद कि निर्धारित समय समाप्त हो गया है, ऐसी शर्तों पर, यदि कोई हो, जैसा कि मामले के न्याय की आवश्यकता हो सकती है, विस्तार कर सकते हैं ऐसी अवधि के लिए समय जो वह उचित समझे।"

1996 के अधिनियम की धारा 43 (1) और (3) 1940 के अधिनियम की धारा 37 (1) और (4) के समान हैं। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि सीमा

अधिनियम, 1963 की पहली अनुसूची के अनुच्छेद 137 के आधार पर मध्यस्थता के विवाद के संदर्भ के लिए या 1940 अधिनियम के तहत एक न्यायालय के समक्ष मध्यस्थ की नियुक्ति की मांग के लिए सीमा अवधि (***उड़ीसा राज्य और अन्य वी. दामोदर दास,*** (1996) 2 एससीसी 216) देखें और साथ ही 1996 अधिनियम (***देखें ग्रासिम इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम केरल राज्य, (2018) 14 एससीसी 265)***कार्रवाई के कारण की तारीख से तीन साल है या वह दावा जिसे मध्यस्थता करने की मांग की जाती है, पहले उत्पन्न होता है।

दामोदर दास (पूर्वोक्त) में, इस न्यायालय ने पृष्ठ 4–5 पर एंथनी वाल्टन (19 वां संस्करण) द्वारा मध्यस्थता पर रसेल का भरोसा करते हुए और ***पंचू गोपाल बोस बनाम कलकत्ता बंदरगाह के लिए न्यासी बोर्ड,*** (1993) 4 एससीसी 338 में दो–न्यायाधीशों की पीठ के पहले के निर्णय पर टिप्पणी की कि 1940 के अधिनियम की धारा 8 और 20 के तहत मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए आवेदन के लिए सीमा की अवधि उस तारीख से शुरू होती है, जब दावेदार ने पहली बार वाद का अधिकार या संबंधित विवाद पर मध्यस्थता करने की आवश्यकता का अधिकार प्राप्त किया था।

हम इस मामले के उद्देश्य के लिए ***पंचू गोपाल बोस*** (ऊपर) में भी निर्णय को प्रासंगिक पाते हैं। यह मामला तथ्यों के वर्तमान सेट के समान था, जहां याचिकाकर्ता ने 1979 में प्रतिवादी को बिल भेजे थे, लेकिन भुगतान नहीं किया गया था.एक दशक के अंतराल के बाद, उन्होंने 1989 में प्रतिवादी को मध्यस्थता के लिए एक नोटिस भेजा।इस न्यायालय ने ***पंचू गोपाल बोस*** के मामले में कहा कि इस प्रकार के वाणिज्यिक संदर्भों में, यह निहित है कि मध्यस्थ को अनुबंध की मौजूदा विधि के अनुसार विवाद का निर्णय करना चाहिए, और प्रत्येक बचाव जो अदालत में पक्षकारों के लिए खुला होता, जैसे कि परिसीमा का अभिवाक, मध्यस्थ के निर्णय के लिए भी पक्षकारों के लिए खुला होगा।अन्यथा, जैसा कि इस न्यायालय ने कहाः

> "8..... एक संदर्भ खंड वाले अनुबंध के भंग का दावा किसी भी समय लाया जा सकता है, यह वाद हेतुक होने के 20 या 30 साल बाद हो सकता है, हालांकि विधायिका ने किसी भी आवेदन में इस तरह के दावे को लागू करने के लिए तीन साल की सीमा निर्धारित की है जो कि अदालतों में किया जा सकता है।"

इस न्यायालय ने आगे निम्नलिखित रूप में अभिनिर्धारित कियाः

> "11. अतः, माध्यस्थम् आरंभ करने के लिए परिसीमा की अवधि उस तारीख से चलती है जिसको, यदि माध्यस्थम् खंड नहीं होता तो वाद हेतुक प्रोद्भूत होता। जिस प्रकार सिविल कार्रवाइयों के मामले में दावा उस तारीख से, जिसको वाद हेतुक प्रोद्भूत हुआ था, विनिर्दिष्ट संख्या में वर्षों की समाप्ति के बाद नहीं लाया जाना है, उसी प्रकार माध्यस्थमों के मामले में, दावे को उस तारीख से, जब दावा प्रोद्भूत हुआ था, विनिर्दिष्ट संख्या में वर्षों की समाप्ति के बाद पेश नहीं किया जाना है।"

12. रसेल ऑन आर्बिट्रेशन में, ... पृष्ठ 80 पर यह इस प्रकार कहा गया है:

> "समय का विस्तार स्वतः नहीं होता है और यह केवल तभी दिया जाता है जब 'अनुचित रूप से नुकसान'होता है।हालाँकि, सभी कठिनाइयाँ 'अनुचित कठिनाई'नहीं हैं; यह उचित हो सकता है कि किसी पक्ष को उसके स्वयं के डिफ़ॉल्ट के कारण होने वाली कठिनाई उसके द्वारा वहन की जानी चाहिए, और दूसरे पक्ष को दावे के वर्जित होने के बाद फिर से खोलने की अनुमति देकर स्थानांतरित नहीं किया जाना चाहिए।"(जोर दिया गया)

इसलिए ***पंचु गोपाल बोस*** के मामले में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि दावा सीमा द्वारा निराशाजनक रूप से वर्जित है क्योंकि याचिकाकर्ता अपने स्वयं के आचरण से 10 साल से अधिक समय से अपने अधिकार पर सोया हुआ था।

8. निःसंदेह, 1996 के अधिनियम के अधीन एक भिन्न स्कीम विकसित की गई है। तथापि, हम पाते हैं कि 1996 के अधिनियम की खंड 11 (6) के अधीन किसी आवेदन पर परिसीमा विधि की उपयुक्तता के संबंध में वही सिद्धांत लागू होते हैं जैसा कि 1940 के अधिनियम की खंड 8 और 20 के अधीन मध्यस्थ की न्यायिक नियुक्ति से संबंधित विनिश्चयों में अधिकथित है।

हमारे निष्कर्ष ***ग्रासिम इंडस्ट्रीज*** (उपर्युक्त) में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय से समर्थित हैं।

ग्रासिम इंडस्ट्रीज में, वर्तमान मामले के समान, 1940 के अधिनियम के तहत किए जाने वाले संदर्भ के लिए मध्यस्थता समझौते का प्रावधान किया गया था। हालांकि, अपीलकर्ता ने 2002 में अपना दावा पेश किया, जिसने 1996 के अधिनियम को लागू किया।इसलिए इस न्यायालय को इस मुद्दे का सामना करना पड़ा कि क्या 1996 के अधिनियम के तहत मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए आवेदन अपीलकर्ता के दावे के संबंध में परिसीमा द्वारा वर्जित होगा। इस न्यायालय ने पाया कि भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की खंड 28 को ध्यान में रखते हुए, मध्यस्थता समझौते में पक्षकार दावा करने के लिए एक सीमित अवधि निर्धारित नहीं कर सकते हैं.हालाँकि, मध्यस्थता के आह्वान की सीमा अवधि सीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 137 के तहत कार्रवाई के कारण की तारीख से तीन वर्ष होगी। हालांकि, उस मामले के तथ्यों में, इस न्यायालय ने पाया कि कुछ दावे तीन साल की सीमा अवधि के भीतर उत्पन्न हुए थे और इसलिए, अनुमति दी जा सकती है.

उपरोक्त सिद्धांतों को वर्तमान मामले में लागू करते हुए, हम खुद को उच्च न्यायालय के इस निष्कर्ष से सहमत पाते हैं कि मध्यस्थता आवेदन संख्या 25/2003 और 27/2003 के संबंध में अपीलकर्ता की कार्रवाई का कारण, कार्य आदेश दिनांक 7.10.1979 और 4.4.1980 8.2.1983 को उत्पन्न हुए, जो कि प्रतिवादी को सौंपे गए अंतिम बिल के देय होने पर हुआ। इस तारीख के बाद प्रतिवादी को पत्र/रिमाइंडर लिखकर अपीलकर्ता के पत्राचार मात्र से समय सीमा नहीं बढ़ेगी। इसलिए अधिकतम अवधि जिसके दौरान यह न्यायालय मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए अपीलकर्ता के आवेदन की अनुमति दे सकता था, उस तारीख से 3 वर्ष है जिस पर कार्रवाई का कारण उत्पन्न हुआ था, यानी दिनांक 8.2.1986। इसी तरह, मध्यस्थता आवेदन संख्या 28/2003 के संबंध में कार्य आदेश दिनांक 3.5.1985 के संबंध में, प्रतिवादी ने कहा है कि अंतिम बिल सौंप दिया गया था और 10.8.1989 को देय हो गया था।यह अपीलकर्ता द्वारा विवादित नहीं किया गया है, अतः परिसीमा अवधि दिनांक 10.8.1992 को समाप्त हो गई।

चूंकि अपीलकर्ता ने 2002 में मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए नोटिस दिया और केवल 2003 के अंत तक एक अदालत के समक्ष एक मध्यस्थ की नियुक्ति का अनुरोध किया, उसके दावे को स्पष्ट रूप से सीमा द्वारा वर्जित किया गया है।

9. अपीलकर्ता द्वारा जिन निर्णयों पर भरोसा किया गया है, वे वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों पर लागू नहीं होते हैं। प्रारंभ में, हम देखते हैं कि ***सुंदर कुकरेजा***(ऊपर) में निर्णय तथ्यों के एक अलग सेट पर है। उस निर्णय में, इस न्यायालय के समक्ष सवाल यह था कि क्या भागीदारी विलेख में मध्यस्थता खंड बाद में सेवानिवृत्ति विलेख के आलोक में बना रहेगा, जिसे अपीलकर्ता ने निष्पादित करने से इनकार कर दिया, और क्या न्यायालय द्वारा नियुक्त मध्यस्थ कथित सेवानिवृत्ति विलेख की वास्तविकता की जांच कर सकता है.इसलिए यह परिसीमा के मुद्दे के लिए प्रासंगिक नहीं है।

अन्य निर्णयों के बारे में बात करते हुए, यह सच है कि ***मेजर (सेवानिवृत्त) इंदर सिंह रेखी***(उपर्युक्त) में, इस न्यायालय ने कहा कि एक मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए विवाद का अस्तित्व आवश्यक है। विवाद तब पैदा होता है जब एक पक्ष द्वारा दावा किया जाता है और दूसरे पक्ष द्वारा अस्वीकार किया जाता है। 'विवाद'शब्द में एक सकारात्मक तत्व निहित है और केवल भुगतान करने के लिए निष्क्रियता से यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि विवाद मौजूद है। उस मामले में, क्योंकि प्रतिवादी आवेदक को देय बिलों को अंतिम रूप देने में विफल रहा, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि वाद हेतुक उस तारीख से उत्पन्न नहीं माना जाएगा जिस तारीख को भुगतान देय हुआ था, बल्कि उस तारीख को माना जाएगा जब आवेदक ने पहली बार प्रतिवादी को बिलों को अंतिम रूप देने का अनुरोध किया था. हालाँकि, न्यायालय ने यह भी स्पष्ट रूप से देखा कि '*एक पक्ष अनुस्मारक लिखकर या अनुस्मारक भेजकर कार्रवाई के कारण के संचय को स्थगित नहीं कर सकता है*/वर्तमान मामले में, अपीलकर्ता ने उच्च न्यायालय के इस निष्कर्ष पर विवाद नहीं किया है कि अपीलकर्ता ने स्वयं 8.2.1983 को प्रतिवादी को अंतिम बिल सौंप दिया था।इसलिए ***मेजर (सेवानिवृत्त) इंदर सिंह रेखी***(पूर्वोक्त) में होल्डिंग लागू नहीं होगी, क्योंकि उस मामले में, आवेदक के दावे को प्रत्यर्थी की बिलों को अंतिम रूप देने में विफलता के कारण विलंबित किया गया था।इसलिए वर्तमान मामले में आवेदन करने का अधिकार उस तारीख से प्राप्त हुआ जिस दिन अंतिम बिल बनाया गया था (देखें ***यूनियन ऑफ इंडिया बनाम मोमिन कंस्ट्रक्शन कंपनी***, (1997) 9 एससीसी 97)।

10. ***हरि शंकर सिंघानिया***(उपरोक्त) मामले में मध्यस्थता के लिए भेजा जाने वाला विवाद एक विघटित पारिवारिक साझेदारी फर्म के भागीदारों के बीच संपत्तियों के विभाजन के संबंध में था। अपीलार्थियों ने विशेष रूप से यह दर्शाने वाले पत्रों को रिकॉर्ड पर रखा कि पक्षकार उस चरण से पहले एक सौहार्दपूर्ण समाधान तक पहुंचने की कोशिश कर रहे थे जहां विवाद का न्यायनिर्णयन अपरिहार्य हो गया था। इस न्यायालय ने कहा कि मध्यस्थता के माध्यम से निर्णय का चरण तब आता है जब सुलह के साथ या उसके बिना समझौता असंभव हो जाता है।इसलिए इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि परिसीमा अवधि तब तक नहीं चलेगी जब तक पक्षकार बातचीत कर रहे हैं। इस अर्थ में, जब समझौता वार्ता हो रही थी, तो पक्षकारों के बीच अंतिम संचार की तारीख से परिसीमा की अवधि शुरू होगी।

यह ध्यान रखना प्रासंगिक है कि ***हरि शंकर सिंघानिया*** में निष्कर्ष एक पारिवारिक समझौते के विशिष्ट संदर्भ में किए गए थे।इस न्यायालय ने विशेष रूप से कहा कि इस तरह के समझौते को औपचारिक वाणिज्यिक समझौते से अलग माना जाना चाहिए, और यह कि परिसीमा आदि की तकनीकी बाधाओं के बिना पारिवारिक समझौतों को बढ़ावा देने के प्रयास किए जाने चाहिए।इसलिए यह न्यायालय वर्तमान मामले की तरह एक व्यापारिक विवाद पर विचार नहीं कर रहा था।

श्री राम मिल्स लिमिटेड(उपर्युक्त) में, इस न्यायालय ने पाया कि कुछ भूमि के संयुक्त विकास को लेकर दोनों पक्षों के बीच लगातार टकराव चल रहा था।उन्होंने अपने विवाद को निपटाने के लिए एक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए थे, हालांकि प्रतिवादी ने इस समझौता ज्ञापन को रद्द कर दिया था, इसलिए 1996 के अधिनियम की खंड 11 (6) के तहत विवाद को मध्यस्थता के लिए भेजा गया था।इस न्यायालय ने पक्षकारों के बीच बातचीत के पूरे इतिहास पर विचार करने के बाद, जो उसके समक्ष रखा गया था, उस मामले के तथ्यों पर निष्कर्ष निकाला कि दावा परिसीमा द्वारा वर्जित नहीं होगा क्योंकि पक्षों के बीच कार्रवाई का कारण जारी था।

सुसंगत पूर्व निर्णय के अवलोकन से, हम सहमत हैं कि तथ्यों और परिस्थितियों के एक निश्चित समूह पर, वह अवधि जिसके दौरान पक्षकार सौहार्दपूर्ण समझौते की दिशा में सद्भावपूर्वक बातचीत कर रहे थे, 1996 के अधिनियम के तहत मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने के लिए सीमा की अवधि की गणना करने के उद्देश्य से अपवर्जित किया जा सकता है। हालांकि, ऐसे मामलों में पार्टियों के बीच बातचीत

के पूरे इतिहास को विशेष रूप से अभिवचन किया जाना चाहिए और रिकॉर्ड पर रखा जाना चाहिए। न्यायालय को ऐसे इतिहास पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद यह पता लगाना चाहिए कि वह 'ब्रेकिंग प्वाइंट'क्या था जिस पर कोई भी युक्तियुक्त पक्षकार किसी समझौते पर पहुंचने के प्रयासों को छोड़ देता और विवाद को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करता।इस 'ब्रेकिंग पॉइंट'को तब उस तिथि के रूप में माना जाएगा जिस पर सीमा के प्रयोजन के लिए कार्रवाई का कारण उत्पन्न होता है।वाणिज्यिक विवादों के मामले में, जहां पक्षकार का प्राथमिक हित उनके लिए देय भुगतान सुनिश्चित करना है, यह अवधारित करने के लिए आरंभिक सीमा कम होगी, जहां यह कहा जा सकता है कि पक्षकारों का विवाद सौहार्दपूर्ण ढंग से निपटाने में अधिक हित है और इसलिए दावे के औपचारिक न्यायनिर्णयन में विलंब होता है।

इसके अतिरिक्त, वाणिज्यिक विवाद में, जबकि केवल भुगतान करने में विफलता वाद हेतुक को जन्म नहीं दे सकती है, एक बार जब आवेदक ने अपने दावे पर जोर दिया है और प्रतिवादी ऐसे वाद हेतुक जवाब देने में विफल रहता है, तो ऐसी विफलता को विवाद को जन्म देने वाले आवेदक के वाद हेतुक खंडन माना जाएगा और इसलिए मध्यस्थता को संदर्भित करने के लिए वाद हेतुक माना जाएगा। यह आवेदक के लिए झूठ नहीं है कि वह अपने दावे को निपटाने में प्रतिवादी की विफलता के कारण विवाद को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने के लिए अनुचित रूप से लंबी अवधि के लिए इंतजार कर रहा था और क्योंकि वे इस बीच प्रतिवादी को अभ्यावेदन और अनुस्मारक लिख रहे थे।

11. हमारी सुविचारित राय है कि ***हरि शंकर सिंघानिया*** और ***श्री राम मिल्स लिमिटेड***(उपर्युक्त) के निर्णय अपीलार्थी के मामले में लागू नहीं होंगे क्योंकि इन मामलों में पक्षकारों की बातचीत का पूरा इतिहास इस न्यायालय को उपलब्ध कराया गया था। वर्तमान मामले में, अपीलकर्ता कंपनी ने इस न्यायालय के समक्ष अस्पष्ट रूप से कहा कि वह निपटान समिति के समक्ष दिनांक 4.10.1997 के आवेदन से पहले के 14 वर्षों में प्रतिवादियों के साथ 'बातचीत'में शामिल थी। तथापि, इसने यह दिखाने के लिए अभिलेख पर कोई साक्ष्य नहीं रखा कि इसने पहली बार बकाया राशियों के संबंध में प्रतिवादी को अभ्यावेदन कब दिया था, और प्रतिवादी के साथ उनकी बातचीत का इतिहास क्या था कि केवल 1997 में ही उन्होंने समझौता समिति से संपर्क करने के बारे में सोचा था.इसके अलावा, उन्होंने यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं लाया है कि उन्हें एक मध्यस्थ की नियुक्ति का अनुरोध

करने से पहले निपटान समिति के समक्ष आगे बढ़ने की आवश्यकता थी। मध्यस्थता खंड ऐसी किसी आवश्यकता को निर्धारित नहीं करता है।

इसलिए हम पाते हैं कि अपीलकर्ता कंपनी के मामले में दुर्भावना का एक निश्चित तत्व है जहां तक उसने दिनांक 4.10.1997 के बाद प्रतिवादी के साथ अपनी बातचीत के संबंध में विस्तृत प्रस्तुतियां दी हैं, लेकिन उस तारीख से पहले देय भुगतान की वसूली के लिए की गई विशिष्ट कार्रवाइयों पर स्पष्ट रूप से चुप्पी साध रखी है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की खंड 114 (जी) के तहत यह न्यायालय यह अनुमान लगा सकता है कि जो साक्ष्य पेश किया जा सकता है और पेश नहीं किया जाता है, वह यदि प्रस्तुत किया जाता है, तो उस व्यक्ति के लिए प्रतिकूल होगा जो उसे रोकता है।

इसलिए, पक्षकारों के समझौता वार्ता इतिहास के संबंध में अपीलकर्ता द्वारा अभिलेख पर रखे गए विशिष्ट अभिवचनों और साक्ष्य की अनुपस्थिति में में, यह न्यायालय अपीलकर्ता की इस दलील को प्रतिग्रहण नहीं कर सकता है कि यह केवल प्रत्यर्थी के दिनांक 18.12.1999 के पत्र के बाद ही था कि अपीलकर्ता बकाया राशियों के संबंध में मध्यस्थता पर विचार कर सकता था.यदि हमें समझौता समिति के समक्ष कार्यवाही में बिताए गए समय को भी शामिल करना होता, तो सीमा अवधि, हाल ही में, दिनांक 4.10.1997 से शुरू हो गई होती, जब अपीलकर्ता ने समझौता समिति को एक ज्ञापन दिया था और समिति उस पर प्रतिक्रिया देने में विफल रही थी।

यह नोट करना और भी प्रासंगिक है कि प्रतिवादी का दिनांक 18.12.1999 का पत्र भी अपीलकर्ता के दावों का पूरी तरह से खंडन नहीं करता है लेकिन सत्यापन के लिए कुछ दस्तावेजों को प्रस्तुत करने का अनुरोध करता है।इसलिए यह उस समय की मौजूदा स्थिति से इतना अलग नहीं था कि यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि अपीलकर्ता उपरोक्त पत्र से पहले मध्यस्थता पर विचार नहीं कर सकता था।

हम यह भी जोड़ना प्रासंगिक पाते हैं कि अपीलकर्ता का 14 वर्षों के लिए अपने अधिकार पर सोने का स्वयं का व्यतिक्रम 1996 के अधिनियम की खंड 43 (3) के तहत समय के विस्तार को न्यायोचित ठहराने या परिसीमा अधिनियम की खंड 5 के तहत विलंब की माफी के लिए 'पर्याप्त कारण'दिखाने का मामला नहीं बनेगा। अपीलकर्ता को उचित परिसीमा अवधि के भीतर 1940 के अधिनियम की

खंड 8 (2) के तहत एक मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए न्यायालय से संपर्क करना चाहिए था।हम उच्च न्यायालय की इस टिप्पणी से सहमत हैं कि 1996 के अधिनियम के उपबंधों का लाभ उठाते हुए, प्रतिवादी के विरुद्ध मौद्रिक दावा करने के लिए संपूर्ण विवाद मनगढ़ंत प्रतीत होता है।

12. इसलिए अपील खारिज की जाती है और उपरोक्त शर्तों में आक्षेपित निर्णय और आदेश की पुष्टि की जाती है.

न्यायाधीश [एन. वी. रमना]

न्यायाधीश [मोहन एम. शांतनागौदर]

न्यायाधीश [अजय रस्तोगी]

नई दिल्ली; 3 सितंबर, 2019

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**'के जरिए अनुवादक की सहायता से किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।